जैनदर्शन में ईश्वर की अवधारणा

☐ सौभाग्यमल जैन

जैनदर्शन में "ईश्वर" का कोई स्थान है या नहीं ? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है किन्तु इस प्रश्न पर कोई मत प्रतिपादित करने के पूर्व यह आवश्यक है कि "ईश्वर" शब्द से क्या तात्पर्य है ? इसका विश्लेषण किया जाय। वास्तव में ईश्वर, भगवान्, परमेश्वर आदि पर्यायवाची शब्द हैं। एक संस्कृत के कवि ने "भगवान्" शब्द की व्याख्या करते हुए कहा—

ऐश्वर्यस्य, समग्रस्य, धर्मस्य, यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव, षण्णां "भग" इतीरणा॥

तात्पर्य यह है कि "भग" शब्द में समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, इन छह का समावेश होता है, इस प्रकार इन छह ऐश्वर्यों से युक्त को "भगवान्" कहा जा सकता है। यही भाव "ईश्वर" शब्द से है। ऐश्वर्यवान् (साहबे औसाफ) को ईश्वर कहा जाता है। जिस प्रकार भौतिक ऐश्वर्य से सम्पन्न को "साहबे जायदाद" कहा जाता है इसी प्रकार आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक ऐश्वर्य से युक्त को ईश्वर (साहबे औसाफ) कहा जा सकता है। विश्व में प्रचलित धर्मों में ईश्वरसम्बन्धी मान्यताओं का यदि हम विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होगा कि कुछ धर्मों में ईश्वर को रचयिता, नियामक माना जाता है, कुछ में उसे प्राणियों के भले-बुरे कर्मों का निर्णायक मानकर दण्डदाता या पुरस्कारदाता के रूप में माना जाता है या उसे दयालु मानकर क्षमादाता के रूप में चित्रित किया जाता है। कुछ में ईश्वर केवल साक्षी रूप माना जाता है। यदि हम वैदिककाल की मान्यता पर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होगा कि उस काल में विश्व की अज्ञात प्राकृतिक शक्तियों (मानव समुदाय का उपकार करने वाली, सहायता प्रदान करने वाली या भयानक सभी शक्तियों) में मानव ने "देवत्व" का आरोपण करके बहु-देववाद की स्थापना की। हम देखते हैं कि उस काल में मानव को दैवी-आपत्तियों का सामना करना पड़ता था, वैज्ञानिक आविष्कार नहीं हुए थे, प्रकृति के रहस्यों से वह वाकिफ नहीं था। इस कारण इस प्रकार की शक्ति में देवत्व की कल्पना मानव-समाज की सहज स्फुरित भावना का प्रतीक है। जैसे-जैसे मानव का वैचारिक स्तर उन्नत हुआ वैसे-वैसे उसने एक ब्रह्म की कल्पना की। उसी को जगत् का मूलाधार माना। समस्त प्राणिजगत् उसी ब्रह्म का प्रतिरूप है। तात्पर्य यह है कि वैदिक परम्परा में द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद के निरूपण के साथ ब्रह्म और जीव के पृथक्त्व तथा एकत्व की मान्यता प्रचलित हुई। अद्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य शंकर ब्रह्म को निर्गुण तथा द्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य मध्व ब्रह्म को सगुण मानते हैं।

यह एक संयोग की बात है कि विश्व के लगभग सभी धर्माचार्य एशिया में हुए जिनमें कुछ एकेश्वरवाद के हामी तथा कुछ बहुदेववाद के हामी थे। कुछ के निकट ईश्वर का स्वरूप निराकार तथा कुछ के निकट साकार स्वरूप था। जो धर्माचार्य ईश्वर अथवा भगवान् के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे उनके मत में भी समष्टि को नियमित करने वाली किसी शक्ति का अस्तित्व अवश्य था। चाहे उसको "दैवी शक्ति" (Spirit) के नाम से पहचाना जाये या किसी और नाम से। यह प्रश्न गौण था। वैदिक परम्परा के अतिरिक्त इस्लाम एकेश्वरवाद का हामी था। इस्लाम का पवित्र कलमा "ला इलाहा इल्लिल्लाह मुहम्मुदरसूलिल्लिाह" है जिसका अर्थ यह है कि ईश्वर केवल एक है और हजरत मुहम्मद उसके रसूल हैं, पैगम्बर हैं, उसके संदेशवाहक हैं। इस्लाम में ईश्वर के अतिरिक्त किसी और शक्ति की मान्यता "शिरकत" कहलाती है। और इस मान्यता का जबरदस्त विरोध है। सूफी मत के सन्त ईश्वर तथा सांसारिक जीवों के मध्य "द्वैत" का एक पर्दा मानते हैं जहाँ वह पर्दा (आवरण) हटा कि सांसारिकजीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। कहा गया है कि—

"महबूब मेरा मुझ में है, मुझको खबर नहीं
ऐसा छिपा है पर्दे में, जो कि आता नजर नहीं।
शौक है दीदार का, तो नजर पैदा कर॥"

इसके अतिरिक्त सूफी संत, मानव के अन्तरतम में ही ईश्वरीय प्रकाश (जलवा) का अस्तित्व मानते थे—

दिल के आईने में है तस्वीरे यार।
जब जरा गरदन झुकाई, देख ली॥

साथ ही ईश्वर को सर्वव्यापी मानते थे तथा वेदान्त की अद्वैत परम्परा के अनुसार अनलहक (अहं ब्रह्मास्मि) का नाद करते हुए ईश्वरीय प्रेम में मस्त रहते थे।

जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है

और

आदम को खुदा मत कहो, आदम खुदा नहीं।
लेकिन खुदा के नूर से, आदम जुदा नहीं॥

एक प्रसिद्ध सूफी संत सरमद का वाकआ बहुत प्रसिद्ध है जो अपनी ईश्वरीय प्रेम में मस्त जिन्दगी व्यतीत करता-करता दिल्ली पहुँचा। उस काल में दिल्ली के तख्त पर एक धर्मान्ध बादशाह औरंगजेब का शासन था। सरमद अपनी मस्ती में "अनलहक" की आवाज लगाता हुआ घूम रहा था। बादशाह ने उसे कई बार चेतावनी दी कि वह इस तरीके से बाज आ जाए। बादशाह के निकट यह कुफ्र था किन्तु संत अपनी मस्ती में इतना तल्लीन था कि उसको इस बात पर ध्यान देने का समय ही नहीं था। अंततोगत्वा बादशाह ने संत को मृत्यु-दण्ड दिया। उस समय के उसके वाक्य, उसकी मस्ती, तल्लीनता का स्पष्ट दिग्दर्शन कराते हैं—

बजुर्मे इश्क़ तो अम, मी कुशंद मोगा अस्त।
तो नीज़ वस्सरे वांम, आंकि खुद तमाशा रास्त॥

तुझे तेरे इश्क़ में मारा जा रहा है। जरा अटारी पर चढ़कर देख कैसा तमाशा हो रहा है। इसके अतिरिक्त निर्गुणी संतों में कबीर का स्थान सर्वोच्च है जिसने ईश्वरीय प्रेम में अपने को आपादमस्तक गर्क कर लिया था और उसी मस्ती में उसने "अनहदनाद" सुना था

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उसी मस्ती में मुल्ला, मौलवी, पंडित जैसी धर्मोन्मादी संस्थाओं पर तीखे व्यंग करके उनकी निस्सारता प्रकट की थी। इस प्रकार के एक मस्त विचारक ने कहा था—

किसी का राम काशी में, किसी का है मदीने में
किसी का जन, जमीं, जर में, किसी का खाने-पीने में
कोई कहता गया में है, किसी का योरोशलम में है।
"पैमानन्द" राम अपना या तो हरजा है या सीने में है।।

वास्तविक रूप में मनुष्य स्वयं परमात्मास्वरूप है। उसका स्थान मनुष्य का हृदय है या वह सर्वव्यापी है। किन्तु जहाँ इस्लाम अपनी मान्यता पर इतना दृढ़ था कि जो ईश्वर (अल्लाह) को लाशरीक कहता था उसी में कई ऐसे शायर हुए कि जिन्होंने ईश्वर की दयालुता का वर्णन करते हुए उसको चाटुकारिता के समकक्ष माना। उदाहरणस्वरूप—

तेरे करम के भरोसे पर हश्र में या रब,
गुनाह लाया हूं और बेहिसाब लाया हूं।

और

गया शैतान मारा—एक सिजदे के न करने से
दोजख सही पे सर का, झुकाना नहीं अच्छा।

और इसी कारण शायर ने सख्त मजाक करते हुए लिखा था:—

हुआ है चार सिजदों पर यह दावा जाहिदों तुमको।
खुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है?

इस भूमिका के परिप्रेक्ष्य में यदि हम जैनदर्शन के तत्त्वज्ञान पर दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट जाहिर है कि उपर्युक्त किसी भी रूप में ईश्वर की मान्यता यहाँ पर नहीं है। जहाँ तक सृष्टिकर्ता तथा कर्मफलप्रदाता का रूप है, जैनधर्म स्पष्ट रूप से इंकार करके बताता है कि यह सारा विश्व कार्य-कारण के आधार पर अनादि काल से चला आ रहा है तथा अंतहीन है। (Begningless & endless) विश्व में कभी सर्वप्रलय नहीं हो सकती। जो सत् है वह कभी असत् नहीं हो सकता। यह पृथक् बात है कि द्रव्य के पर्याय में रूपान्तर होता रहता है। कहा गया है:—

नासतो विद्यते भावः, नाभावो जायते सत।।

केवल जैनधर्म ही नहीं वैदिक परम्परा में भी कई ग्रंथों में ईश्वर को विश्व का नियंता या कर्मफलप्रदाता नहीं मानते हुए "स्वभाव" के कारण ही इनका अस्तित्व माना है जैसा कि श्रीमद्भागवद् गीता में कहा गया:—

"न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगः स्वभावस्तु प्रवर्तते।
नादत्ते कस्यचित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

जैनदर्शन का विश्वास है कि प्राणी स्वयं अपने कर्म करने में स्वतंत्र है तथा भले-बुरे कर्मों के कारण वह पुण्य-पाप का बंध करता है। वास्तव में ईश्वर नाम की कोई शक्ति न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो न्यायदाता (जज) का कार्य करती है न उसकी दयालुता किसी को भले-बुरे कर्मों से क्षमा प्रदान कर सकती है, न किसी ईश्वर में यह शक्ति है कि वह उसके नाम-स्मरण या नाम-जप से प्रसन्न होकर उसे क्षमा प्रदान कर सके। तात्पर्य यह है कि जैनदर्शन की सृष्टिनिर्माण तथा कर्मफल की मान्यता अत्यन्त तर्क पुरस्सर है और आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि समष्टि का निर्माण कार्य-कारण (Law of Causes & Effect) के आधार पर ही हुआ है। वास्तव में जैन धर्म में ईश्वर के किसी अवतार धारण करके विश्व में अवतरित होने की मान्यता को स्थान नहीं है। वह ईश्वर का मानवीय रूप (Personalised Godhood) स्वीकार नहीं करता। उसके निकट मौलिक रूप में विश्व का समस्त प्राणिजगत् शुद्ध-बुद्ध है। उसकी क्षमता है कि वह आत्मिक गुण या आध्यात्मिक या आधिदैविक ऐश्वर्य से महात्मा अथवा परमात्मा पद तक पहुँच सके। जैसा कि कहा गया है कि निश्चय नय की दृष्टि से प्रत्येक जीवात्मा में यह (Potentiality) है कि वह वास्तविक रूप से परमात्मत्व अपने में आरोपित कर सके। अधिक उपयुक्त यह है कि हम "ईश्वर" शब्द के स्थान पर "परमात्मा" शब्द का उपयोग करें। जीवात्मा अपनी आत्मिक उन्नति करते-करते महान् आत्मा हो सकती है और जब सारे घातिया कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय) क्षय करके शुद्ध-बुद्ध हो जाती है तो उसे "कैवल्यप्राप्ति" हो जाती है और जब अघातिया ४ कर्म (नाम, गोत्र, आयुष्य, वेदनीय) क्षय हो जाते हैं, तो वही सिद्ध हो जाता है और कृतकृत्य हो जाता है। सती मदालसा का एक वाक्य प्रसिद्ध है जो वह अपने गर्भस्थ शिशु या नवजात शिशु को अच्छे संस्कार डालने के लिये कहा करती थी—

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि।

तथा अन्य दर्शनों में भी कहा गया है :—

न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म
न बन्धुर्न मित्रं, गुरुर्नैव शिष्यः।
चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम्
न मंत्रं न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।

जैन धर्म में आत्मिक ऐश्वर्य या आत्मा की शुद्ध स्थिति के प्रकटीकरण के लिये जिन १४ गुणस्थानों का क्रम स्वीकार किया गया है वह अत्यन्त वैज्ञानिक विचारसरणी है। उससे जीवात्मा, जो यद्यपि कर्मफल से लिप्त है वह शनैः शनैः उन्नत अवस्था को प्राप्त करती हुई अपने शिवस्वरूप को प्राप्त कर सकती है। यही ईश्वरत्व है, परमात्मत्व है। तात्पर्य यह कि जैन दर्शन में उपरोक्त अर्थों में ईश्वर का स्थान नहीं है किन्तु ईश्वरत्व का स्थान अवश्य है और Personalised Godhood नहीं है अपितु प्रत्येक आत्मा निश्चय नय से शिवस्वरूप है और अपने राग-द्वेष से मुक्त होकर अपने शिवत्व को प्रकट कर सकती है। जीवात्मा में शिवत्व उसी प्रकार व्याप्त है जैसे:—

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा जलं जले क्षिप्तं, क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ।
अविशेषो भवेत्तद्वद्, जीवात्मपरमात्मनः ।।

हमारे देश में गत शताब्दियों में ईश्वर संबंधी मान्यता भ्रामक हो गई और मनुष्य अपने को ईश्वराधीन मानने लगा। "हरीच्छा बलीयसी" के वाक्य ने मानव को केवल नियतिवादी बना दिया। उद्यम, साहस, पराक्रम पुरुषार्थ से उसका संबंध नहीं रहा। ईश्वर की मर्यादा बढ़ती रही और आत्मा की घटती रही। मानव के चिन्तन में "अमृतस्य पुत्राः" के स्थान पर "पापोऽहं पापकर्माऽहं" "पापात्मा, पापसंभवः" का नाद गूंज उठा जिसने उसके आत्मगौरव का नाश कर दिया। यह विडम्बना रही, किन्तु जैनदर्शन ने सबसे बड़ी देन यह दी कि उसने मानव के आत्मगौरव की स्थापना की। देव की गुलामी से मुक्त किया "न हि, मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्" जैसे वाक्यों की सही सही स्थापना की। इसी संदर्भ में मुझे वैशेषिकदर्शन के एक विद्वान् की रोचक घटना स्मरण आती है जो जगन्नाथ-पुरी में दर्शन करने गया था किन्तु असमय होने से कपाट बन्द मिले तब उसने कपाट खोलने का आग्रह करते हुए कहा था :—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्तसे।
उपस्थितेषु बौद्धेषु, मदधीना तव स्थितिः ।। —उदयनाचार्य

संभवतः इस प्रकार के उद्‌गार उस विचारसरणि के परिणाम थे जो जैनधर्म ने प्रवाहित की थी। मानव ने अपने आत्मसम्मान को ध्यान में रखकर यह श्लोक कहा होगा। जैनधर्म ने स्पष्ट रूप से बताया कि मनुष्य-जन्म देवत्व से भी बढ़कर है। मानव शुद्ध, शिवत्व प्रकट कर सकता है जबकि देव को भी मोक्ष तभी मिल सकेगा जबकि वह मनुष्य जन्म ले। मनुष्य कर्म में स्वतंत्र है। किसी देव, ईश्वर की गुलामी या उसकी खुशामद की उसे आवश्यकता नहीं है।

वास्तविक रूप से देखा जाय तो एशिया ही नहीं सारे विश्व के धर्माचार्य एक प्रकार से उस दैवी संदेश के वाहक थे। चाहे वह राम हों, कृष्ण हों, महावीर हों, बुद्ध हों, ईसा, मुहम्मद, जरथुस्त्र हों। इन सबने मानव को भला बनाने, उसे उन्नत बनाने तथा अपने शुद्ध रूप में शिवत्व प्रकट करने का मार्ग बताया था। जैसा कि एक जैन अध्यात्मयोगी सन्त ने अपना मन्तव्य प्रकट करके कहा था:—

राम कहो, रहमान कहो, कोई कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोई ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजनभेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूपी री।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड स्वरूपी री।
निजपद रमे सो राम कहिये, रहम करे रहमान री।
करे करम कान्ह सो कहिये, महादेव निर्माण री।
परसे रूप पारस सो कहीये, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्मा री।
इस विधि साधो, आप 'आनंदघन' चेतन मय निष्कर्ष री।

—शुजालपुर मंडी (म. प्र.)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org